'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ४७] चैत्र २०४५ वि०–अप्रैल १९८८ [संख्या १

'चण्डी' का ४७ वाँ वर्ष

'कौल-कल्पतरु' चण्डी के प्रकाशन का ४७ वाँ वर्ष चैत्र २०४५ वि०–अप्रैल १९८८ से प्रारम्भ हो गया है।

'चण्डी' के ४७ वें वर्ष में १२ सामान्य अङ्क एवं ४ विशिष्ट अङ्क (प्रत्येक १०० पृष्ठीय) द्वारा ऐसा खोज-पूर्ण एवं रोचक साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है, जिससे सभी बन्धु लाभ उठा सकेंगे और प्रत्येक अङ्क (सामान्य अथवा विशिष्ट) संग्रहणीय कहलायेगा।

'चण्डी' वर्ष ४७ के सामान्य अङ्कों में सरल प्रयोग-विधि-सहित महत्त्वपूर्ण सचित्र साहित्य मोटे अक्षरों में तथा हिन्दी-अर्थ-सहित प्रकाशित हो रहा है, जो सभी पाठक-बन्धुओं के लिए उपयोगी है। उदाहरणार्थ पाँच महत्त्व-पूर्ण विषयों की सूची इस प्रकार है—

१ लघु चण्डी (देवी-भागवत में उद्धृत चण्डी-पाठ)
२ सविधि सप्त-श्लोकी दुर्गा (सामान्य एवं मन्त्रात्मक)
३ भगवान् श्री शङ्कराचार्य कृत भगवती मानस अर्चन
४ भगवती विन्ध्यवासिनी की पूजन-विधि एवं विन्ध्यवासिनी-पीठ का सचित्र वर्णन
५ कामाख्या तन्त्र (हिन्दी-अनुवाद-सहित)

विशिष्ट अङ्क क्रमशः इस प्रकार हैं—

१ हिन्दी शारदातिलक तन्त्र, २ हिन्दी भुवनेश्वरी रहस्य,
३ क्या राम-चरित-मानस तन्त्र है ?,
४ चण्डी-पुराण (भारतवर्ष में प्राप्त एकमात्र दुर्लभ पाण्डुलिपि)।

'चण्डी' के प्रत्येक मास में प्रकाशित होनेवाले १२ सामान्य अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४५-०० रु० है। चार विशिष्ट अङ्कों का मूल्य ६०-०० रु० है।

जो बन्धु 'चण्डी' वर्ष ४७ के सामान्य अङ्क व विशिष्ट अङ्क दोनों मँगाना चाहते हों, वे कुल १००-०० रु० भेजेंगे। उनकी सेवा में चार विशिष्ट अङ्क रजिस्ट्री द्वारा जनवरी, १९८९ में भेजे जायेंगे।

सामान्य वार्षिक मूल्य : ४५-०० रु०

१ सम्पादकीय आवरण-पृष्ठ २
२ श्री प्राणेश्वर श्रीकृष्ण प्रयोग १
३ श्रीपीताम्बरा पीठ, दतिया में तीन जयन्तियाँ २
४ कालिका-पुराण ३
५ महा-कवि श्री कालीदत्त नागर १५

सम्पादकीय

शाक्त वाङ्मय में 'कालिका पुराण' का अपना विशेष महत्त्व रहा है किन्तु यह खेद की बात है कि आज तक उसका हिन्दी-रूपान्तर किसी के द्वारा नहीं किया गया। उसका मूल रूप भी प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं है। 'पं० देवीदत्त शुक्ल शताब्दी समारोह' के सन्दर्भ में हमारा परिचय जबलपुर विश्व-विद्यालय के भू० पू० कुलपति, ७५ वर्षीय वयोवृद्ध, पं० प्रभुदयाल जी अग्निहोत्री से हुआ और ज्ञात हुआ कि उनकी देख-रेख में लेफ्टिनेण्ट डा० (श्रीमती) आरती वैश्य ने १० वर्ष पूर्व १९७८ की बसन्त-पञ्चमी के दिन उक्त महत्त्व-पूर्ण 'पुराण' पर भोपाल विश्व-विद्यालय के तत्त्वावधान में शोध प्रारम्भ किया, जिसके फल-स्वरूप फरवरी, १९८२ में ६०० पृष्ठों का शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत ही नहीं हुआ, हिन्दू-विश्वविद्यालय, वाराणसी के उप-कुलपति श्री वेङ्कटाचलन एवं उसी वि० वि० के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष पं० रेवाप्रसाद द्विवेदी की संस्तुति पर जून, १९८३ को उक्त ग्रन्थ के कृतित्व पर श्रीमती वैश्य को 'डाक्टर' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

लगभग ५ वर्षों के परिश्रम से प्रस्तुत उक्त शोध-ग्रन्थ के सात अध्याय हैं—१ भूमिका : पुराण-परिचय, कालिका पुराण का इतिहास, २ मुख्य कथा, ३ अवान्तर कथायें, ४ स्तुतियाँ और वर्णन, ५ तांत्रिक साधना, ६ सांस्कृतिक अध्ययन और ७ उपसंहार : कालिका-पुराण का महत्त्व।

इस शोध-ग्रन्थ को प्रस्तुत करने में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्व-वेद संहिताओं, ११ उपनिषदों, गृह्य और श्रौत सूत्रों, अर्थ-शास्त्र, पुराण-सम्बन्धी साहित्य, दर्शन-शास्त्र आदि से सम्बन्धित ३८ ग्रन्थों एवं इन्हीं विषयों पर अंग्रेजी में प्रकाशित २१ शोधात्मक ग्रन्थों का गहन अध्ययन डा० (श्रीमती) आरती वैश्य द्वारा किया गया। साथ ही डा० अग्निहोत्री जैसे कितने ही मर्मज्ञ विद्वानों से उन्होंने 'कालिका-पुराण' से सम्बन्धित तथ्यों पर वर्षों लगातार विचार-विमर्श किया।

स्पष्ट है कि यह शोध-ग्रन्थ कितना ज्ञान-वर्द्धक और उपयोगी है। ऐसे ग्रन्थ का प्रकाशित न होना देश की शोध-व्यवस्था की शोचनीय अवस्था का ज्वलन्त उदाहरण है। हमारे अनुरोध पर डा० (श्रीमती) वैश्य ने उक्त शोध-ग्रन्थ का सारांश लेख-रूप में भेजने की कृपा की है, जो 'चण्डी' के इसी अङ्क में प्रकाशित है। आशा है, पाठक बन्धु उसे ध्यान से पढ़ेंगे और लाभान्वित होंगे। डा० अग्निहोत्री एवं डा० वैश्य का सचित्र परिचय 'सम्पादक की वाणी' स्मारिका में शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

***

जन्माष्टमी २०४५ वि० के शुभ अवसर पर :

गुप्तावतार बाबाश्री द्वारा उपदिष्ट अनुभूत मन्त्र

श्री प्राणेश्वर श्रीकृष्ण प्रयोगः

विनियोग—

ॐ अस्य श्रीप्राणेश्वर श्रीकृष्ण-मन्त्रस्य भगवान् श्रीवेद-व्यास ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीकृष्ण परमात्मा देवता, क्लीं बीजं, श्रीं शक्तिः, ऐं कीलकं, प्रणवो (ॐ) व्यापकः, मम समस्त-क्लेश-परिहारार्थं चतुर्वर्ग-प्राप्तये सौभाग्य-वृद्धयर्थं च जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—

श्रीवेद-व्यास-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । श्रीकृष्ण - परमात्मा-देवतायै नमः हृदि । क्लीं बीजाय नमः गुह्ये । श्रीं-शक्तये नमः नाभौ । ऐं-कीलकाय नमः पादयोः । ॐ व्यापकाय नमः सर्वाङ्गे । मम समस्त-क्लेश-परिहारार्थं चतुर्वर्ग-प्राप्तये सौभाग्य-वृद्धयर्थं च जपे विनियोगाय नमः अञ्जली ।

षडङ्ग-न्यास—	**कर-न्यास**	**अङ्ग-न्यास**
ॐ ऐं श्रीं क्लीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
प्राण-वल्लभाय	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
सौः	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
सौभाग्यदाय	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
श्रीकृष्णाय	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
स्वाहा	कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

ध्यान— कृष्णं जगन्मोहन-रूप-वर्णं विलोक्य लज्जाऽऽकुलितां स्मराढ्याम् ।
माध्वीक-माला-युत-कृष्ण-देहं विलोक्य चालिंग्य हरिं स्मरन्तीम् ।।

मानस-पूजन—

१ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीप्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-श्रीपादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि (अधो-मुख--कनिष्ठांगुष्ठ-मुद्रा) । २ हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीप्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-श्रीपादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि (अधो-मुख-तर्जनी-अंगुष्ठ-मुद्रा) । ३ यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीप्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-श्रीपादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि (ऊर्ध्व-मुख-तर्जनी-अंगुष्ठ-मुद्रा) । ४ रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीप्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-श्रीपादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि (ऊर्ध्व-मुख-मध्यमा-अंगुष्ठ-मुद्रा) । ५ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीप्राणेश्वर-श्रीकृष्ण-श्रीपादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि (ऊर्ध्व-मुख-अनामा-अंगुष्ठ-मुद्रा) । ६ शं शक्त्यात्मकं ताम्बूलं श्रीप्राणेश्वर श्रीकृष्ण-श्रीपादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि (ऊर्ध्व-मुख-सर्वांगुलि-मुद्रा) ।

मन्त्र—ॐ ऐं श्रीं क्लीं प्राण-वल्लभाय सौः सौभाग्यदाय श्रीकृष्णाय स्वाहा (२२)

३०,०००० जप से पुरश्चरण ।

जप-समर्पण— गुह्याति-गुह्य-गोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम् ।
सिद्धिर्मे भवतु देव ! त्वत्-प्रसादान्सुरेश्वर !

श्रीपीताम्बरा पीठ, दतिया में– १. भगवान् परशुराम जयन्ती १६-४-८८

'गिरधर शोध-संस्थान', जयपुर के सञ्चालक श्री देवीदत्त चतुर्वेदी : आवेश के समय भगवान् परशुराम ईश्वर हैं, अन्य अवसरों पर ऋषि जमदग्नि के पुत्र अर्थात् ब्राह्मण हैं। हैहय-वंशी क्षत्रियों ने अपने पुरोहित से धन वापस माँगा, न देने पर उन्होंने मार-काट की। भृगु-वंशी रेणुका चिल्लाती रहीं, पति जप करते रहे, हैहय क्षत्रिय गौ छीन ले गए। इस पर सहस्र भुजाओं को भगवान् परशुराम ने काटा। 'सहस्र'-शब्द पूर्ण का वाचक है अर्थात् पूरा संहार किया। सहस्रार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि की हत्या की। इसके फल-स्वरूप पिता का दाह-संस्कार न कर भगवान् परशुराम ने आततायियों का संहार कर उनके रक्त से कुण्डों को भरकर पितृ-तर्पण किया। वे ही 'कुण्ड' पितरों के वरदान से पवित्र 'तीर्थ' बन गए।

भगवान् परशुराम ने 'तन्त्र-विद्या' को प्रकाशित किया। दानी कर्ण ने छल द्वारा आपसे शस्त्र-विद्या प्राप्त की थी, अतः उन्हें समय पर उस विद्या को भूल जाने का शाप दिया, जिससे अर्जुन द्वारा वे मारे गए।

'परमार्थ आश्रम', हरिद्वार के आचार्य श्रीभागवतानन्द सरस्वती : ज्ञान, तप और उपासना से श्री परशुराम ने अमोघ अस्त्र प्राप्त किए और अवतार-लीला की। भगवान् परशुराम ने 'आत्म-रत' और 'प्रतिभा-रत' रहने पर बल दिया तथा 'आत्म-प्रकाश' का बोध कराया। श्री परशुराम-चरित से स्पष्ट है कि सत्य, नीति एवं धर्म की विजय होती है। परशुराम जी ने अपनी जीती हुई धरती दान कर दी। आपके पवित्र चरित से अदम्य पुरुषार्थ और रण-नीति का ज्ञान होता है।

२. भगवती पीताम्बरा जयन्ती, २०-४-८८

आचार्य श्रीभागवतानन्द सरास्वती : श्रीपीताम्बरा पराऽम्बा हैं, स्तम्भन-शक्ति हैं।

श्री देवीदत्त चतुर्वेदी : श्री पीताम्बरा भगवान् श्रीकृष्ण की इष्ट-देवी हैं, यही उनके पीताम्बर धारण करने का रहस्य है।

३. आद्य जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य जयन्ती, २१-४-८८

स्वामी श्री योगानन्द महाराज, वाराकलाँ, भिण्ड : शङ्कराचार्य ने बताया है कि जो व्यक्ति किसी 'सम्प्रदाय' से 'सम्बद्ध नहीं है, वह कितनी ही पुस्तकें पढ़ डाले, अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर नहीं कर सकता। भले ही वह बड़ा तार्किक और उद्भट विद्वान् हो जाय किन्तु जीवन भर वह भटकता ही रहता है, किसी लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाता।

नेपाल के श्री अमर सिंह राणा को शास्त्रार्थ में परास्त किया किन्तु अपने किसी भी मत का खण्डन न करके जो जिसका उपासक है, उसे 'अद्वैत' की उपलब्धि का मार्ग दिखाया। श्री पशुपतिनाथ की पूजा नम्बूदिरी ब्राह्मण से करवाने की परम्परा शङ्कराचार्य ने ही चलाई।

शक्ति-रहित ब्रह्म से हटकर 'भवानी-अष्टक' की रचना शङ्कराचार्य ने की। उस स्तुति में आपने अपने को अकिंचन-रूप में प्रस्तुत करते हुए श्री जगदम्बा की प्रार्थना की है।

'शारदा पीठ' में शङ्कराचार्य ने प्रख्यात 'सौन्दर्य-लहरी' की रचना की, जिसमें 'शक्ति' के बिना 'शिव' को 'शव'-जैसा सत्य-हीन प्रतिपादित किया है। शङ्कर का दार्शनिक ज्ञान विश्व में सर्व-श्रेष्ठ है। आपके प्रथम शिष्य श्री सनन्दन थे, जो काशी में हुए। बाद में मण्डन मिश्र आदि शिष्य बने। नरसिंहावेश में श्री सनन्दन ने ही शङ्कर को बलि देने को उद्यत उग्र भैरव एवं उनके शिष्यों का बध किया था।

स्वीकृत शोध-प्रबन्ध के आधार पर—

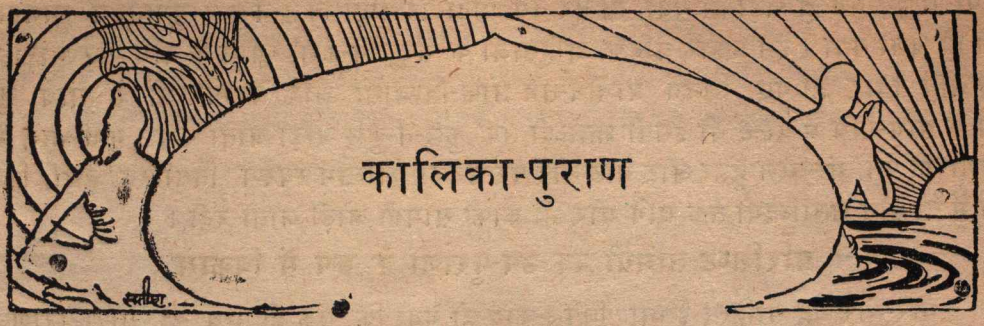

डा० श्री आरती वैश्य, पी-एच० डी०, भोपाल (म० प्र०)

पुराण-साहित्य का महत्त्व एवं इतिहास

वर्तमान हिन्दू-समाज के सामाजिक और धार्मिक विश्वास वेदों की अपेक्षा पुराणों पर अधिक आश्रित हैं। ऐसा लगता है कि वैदिक ऋचाओं के सङ्कलन के समय भी कुछ पुराण-साहित्य विद्यमान था। संहिताओं में ऐसे मन्त्रों की संख्या पर्याप्त है। उन्हें ठीक तरह से समझने के लिए तत्कालीन पुराण-कथाओं को जानना अनिवार्य है। स्वयं अथर्व-वेद में पुराण-साहित्य का उल्लेख है। संहिता तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध पुराण-साहित्य-विषयक संकेत इस बात के साक्षी हैं कि वैदिक काल में भी अनेक परम्पराओं को समझने के लिए वैदिक साहित्य के समानान्तर पुराण-साहित्य का प्रचलन था।

वैदिक ऋचाएँ और ब्राह्मण-ग्रन्थ मस्तिष्कों की उपज हैं, तो पुराण-साहित्य जन-सामान्य में प्रचलित मान्यताओं और विश्वासों का प्रतिबिम्ब। साथ ही दोनों के समानान्तर अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कालान्तर में जैसे-जैसे लोक-विश्वासों में परिवर्तन हुआ, 'पुराण' नाम से अधिकाधिक साहित्य संग्रहीत होता गया। साथ ही जैसे-जैसे वैदिक सभ्यता के भौगोलिक क्षेत्र का विस्तार होता गया, सम्बन्धित क्षेत्रों का पुराण-साहित्य भी इसमें जुड़ता गया। यहाँ तक कि ईसा पूर्व की चतुर्थ शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते पुराण-साहित्य नाम से अध्ययन की एक स्वतन्त्र शाखा ही विकसित हो गई और वैदिक कर्म-काण्डियों के समान पुराण-वाचन करनेवालों का एक स्वतन्त्र वर्ग निर्मित हो गया।

पुराण-वाचकों का कार्य साधारण जनता में वैदिक धर्म और दर्शन के प्रति श्रद्धा जगाना और जटिल विषयों की व्याख्या समझाना था। इस काम के लिये पुराण-वाचक पुरा-कथाओं, जन-श्रुतियों एवं अन्य लोकाचार-परक आख्यानों का सहारा लेते थे। विषय को मनोरञ्जक बनाने के लिए ये लोग नीति-कथाओं तथा कहानियों को स्वयं भी गढ़ लेते थे। न केवल वैदिक अपितु बौद्ध और जैन-धर्मों में भी इस प्रकार के आख्यानों को गढ़ने की परम्परा चल पड़ी थी। प्रारम्भ में इसका उद्देश्य वैदिक मान्यताओं के जटिल रहस्यों को सरल ढंग से समझाना रहा होगा, जिसे महाभारत ने 'वेदार्थ का उप-ग्रहण' कहा है, किन्तु धीरे-धीरे हर पुराण-वाचक परिवार अपनी स्वतन्त्र मान्यताओं को भी उसमें सम्मिलित करता गया।

जब विभिन्न देवताओं यथा—सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अलग-अलग सम्प्रदाय बन गये, तो हर सम्प्रदाय ने सर्व-स्वीकृत परम्पराओं और मान्यताओं के साथ निजी आस्थाओं को भी जोड़कर अपना एक स्वतन्त्र पुराण बना लिया कालान्तर में जब पुराण आजीविका के साधन बन गए और एक

अलग पौराणिक वर्ग ही खड़ा हो गया, तो हर वर्ग पीढ़ी-पर-पीढ़ी कुछ-न-कुछ युगानुरूप सामग्री उसमें जोड़ता ही चला गया। इस प्रकार वैदिक संहिताओं के सङ्कलन-कर्त्ता व्यास के नाम पर भारी-भरकम अठारह पोथे तैयार हो गए, जिनमें प्राचीन-तम लोक-विश्वासों और परम्पराओं से सीधे जुड़ी हुई सामग्री के साथ-साथ ८ वीं-९ वीं ईसवी शताब्दी तक कुछ-न-कुछ जोड़ा जाता रहा। गुप्त-काल में बहुत से पुराणों का पुनः संस्करण हुआ और मोटे तौर पर उनका अन्तिम स्वरूप निर्धारित हुआ, किन्तु कई पुराणों में दो-तीन शताब्दियों तक आगे और भी काफी सामग्री जोड़ी जाती रही।

परिशिष्ट-सामग्री का उप-पुराणों के रूप में विकास

धीरे-धीरे यह साहित्य इतना विपुल-कार्य हो गया कि एक ही पन्थ की सारी पुराण-सामग्री का एक ग्रन्थ में समा सकना कठिन था। तब जैसे वेदों से उप-वेदों का उद्भव हुआ, वैसे ही प्रत्येक पुराण की परिशिष्ट-सामग्री उप-पुराण के नाम से संग्रहीत होती गई। इस बीच अनेक नए धार्मिक सम्प्रदायों का भी उदय हो चुका था, जिनके आचार्यों को जन-साधारण में अपनी बात प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए किसी ग्रन्थ या साहित्य का, जो पुरानी परम्पराओं से जुड़ा हो, सहारा लेना आवश्यक था। अतः इन आचार्यों ने उक्त १८ पुराणों के अनुकरण पर अपने-अपने स्वतन्त्र पुराणों का प्रणयन आवश्यक समझा। पहले तो इस बात का प्रयत्न किया गया कि उप-पुराणों की संख्या भी पुराणों के ही बराबर रहे, किन्तु यह सम्भव न हो सका और उप-पुराणों की संख्या धार्मिक सम्प्रदायों से आगे बढ़ गई। हाँ, बाद में निर्मित होने और विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बन्धित होने के कारण इनमें प्रक्षिप्त सामग्री अपेक्षाकृत कम है।

पुराणों में इतिहास एवं संस्कृत के महत्त्वपूर्ण रत्न

इस प्रकार 'पुराण' और 'उप-पुराण'-साहित्य भारतीय सभ्यता के आदि-काल से लेकर ८ वीं-९ वीं शताब्दी ईसवी तक के वेदाश्रित लोक-विश्वासों, परम्पराओं, आस्थाओं और सामान्य लोक-मान्यताओं का पुञ्जीभूत साहित्य है, जिसमें उच्च कोटि के चिन्तन, विचार और दर्शन के साथ-साथ ऐसी विपुल सामग्री सम्मिलित है, जिस पर विश्वास कर सकना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। न जाने कितनी अति-रञ्जित बातें और गप्पें भी पुराणों में भरी पड़ी हैं, जो प्रवचन-कारों द्वारा लोगों को समझाने के लिए कभी उपयोग में लाई गई होंगी। ऐसी ही अत्युक्ति-पूर्ण, अप्रामाणिक और सर्वथा अविश्वसनीय सामग्री के कारण प्रबुद्ध जनों की आस्था पुराण-साहित्य से हटती गई।

लगभग सवा सौ वर्ष पहले हिन्दू-धर्म को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों को स्वत -प्रमाण मानकर जो आन्दोलन चलाया, उसमें उन्होंने सबसे कड़ा प्रहार पुराणों पर ही किया था और उसे पोप-पन्थी साहित्य की संज्ञा दी, किन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ में भारत और यूरोप में संस्कृत-साहित्य और भारतीय संस्कृति के अध्ययन और अनुशीलन का जो नया आन्दोलन चला, उसने प्रबुद्ध-वर्ग का ध्यान पुराणों की ओर भी आकृष्ट किया।

पार्जिटर और विलसन जैसे विद्वानों के प्रयत्न से यह बात प्रायः स्थापित-सी हो गई कि थोड़े प्रयत्न के द्वारा पुराणों से भारत के आद्य इतिहास और संस्कृति के बहुत से महत्त्वपूर्ण रत्न खोजकर निकाले जा सकते हैं। पिछले कुछ शतकों में विद्वानों की दृष्टि में पुराणों के प्रति आदर जागृत् हुआ है। अनेक पुराणों के हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। वायु, वराह, विष्णु, अग्नि, ब्रह्म-वैवर्त, मार्कण्डेय, भागवत और गरुड़ आदि पुराणों पर श्रेष्ठ प्रामाणिक अध्ययन भी प्रस्तुत हुए हैं।

यह उचित भी है क्योंकि निर्धन-से-निर्धन और अपढ़ परिवार में भी प्रचलित 'सत्य-नारायण कथा', जो हिन्दू धार्मिक जीवन का एक अङ्ग बन गई है तथा संस्कारों में प्रयुक्त होनेवाली मन्त्र-सामग्री, स्तुतियाँ और स्तोत्र एवं 'दुर्गा-सप्तशती' जैसी सर्व-मान्य धार्मिक पुस्तकें पुराणों से ही तो उद्धृत कर ली गई हैं।

पुराणों की अपेक्षा उप-पुराणों का महत्त्व

इतना होने पर भी उप-पुराणों की ओर विद्वानों का ध्यान उतना नहीं गया, जितना अपेक्षित था। डा० हाजरा ने इस दिशा में पहला उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्टडीज इन दि उप-पुराणाज' के प्रारम्भ में इस कमी की ओर संकेत भी किया है। कुछ दृष्टियों से 'उप-पुराण'-साहित्य पुराणों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। इनमें शैव, शाक्त और वैष्णव आदि धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बन्धित प्रामाणिक और सूक्ष्म विवरण अपेक्षाकृत कहीं अधिक हैं। साथ ही उप-पुराणों में प्रक्षिप्त अंश भी उतने नहीं हैं, जितने महा-पुराणों में पाए जाते हैं। अधिकांश उप-पुराणों की सामग्री गुप्त-काल के पश्चात् की है।

'कालिका-पुराण' एक महत्त्व-पूर्ण शाक्त उप-पुराण

'कालिका-पुराण' भी ऐसा ही उप-पुराण है। यह मूलतः शाक्त पुराण रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि उप-पुराणों के मध्य इसका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि प्रायः सभी उपलब्ध पुराण-सूचियों में इसका परि-गणन हुआ है। शायद यही एक उप-पुराण ऐसा है, जिसका नामोल्लेख निरपवाद रूप से समस्त सूचियों में पाया जाता है। यद्यपि इसके नाम के साथ 'उप' उपसर्ग नहीं लगा है, तो भी महा-पुराणों की गिनती से बाह्य होने के कारण इसे उप-पुराण ही कहना समीचीन है।

लगता है कि मूल 'कालिका-पुराण' कालान्तर में लुप्त हो गया। आज इसकी जो प्रति उपलब्ध है, वह उपर्युक्त 'कालिका-पुराण' से भिन्न प्रतीत होती है क्योंकि धर्म-सम्बन्धी निबन्ध-ग्रन्थों में 'कालिका-पुराण' के नाम से जो उद्धरण पाए जाते हैं, वे वर्तमान प्रति में नहीं मिलते। दूसरे कालिका-पुराण' की चर्चा करनेवाले पुराने विद्वानों ने उसे तन्त्र-विभुक्त माना है। जो हो, आजकल पण्डित बलदेव उपाध्याय द्वारा सम्पादित प्रति ही प्रकाशित किन्तु अधुना अप्राप्य 'कालिका-पुराण' नाम से प्रचलित है।

प्रस्तुत 'कालिका-पुराण' स्पष्टतः दो ग्रन्थों का एकीकृत संस्करण प्रतीत होता है। इसका पूर्वार्ध 'शिव-सती और शिव-पार्वती-कथा' तथा उत्तरार्ध 'तान्त्रिक पूजा-विधान और कामाख्या देवी को पूजा' को समर्पित है। यों ऐसा नहीं लगता है कि यह कभी दो पृथक् पुस्तकें रही होंगी, फिर भी प्रयाग-सङ्गम के समान इसमें गङ्गा और यमुना का जल अलग-अलग देखा जा सकता है। काम-रूप के शैलों, नदियों, सरों, कुण्डों, तीर्थों और वहाँ पूजित देवियों, योगिनियों और शिव-लिङ्गों का जितना व्यापक वर्णन इस पुराण में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं मिलता।

शाक्त-विधि के अनुसार पशु-बलि, यहाँ तक कि नर-बलि तक का समर्थन करनेवाला यह पुराण मूलतः वैष्णव तन्त्र को ही पुष्ट करता है। शिव और शक्ति के ऊपर विष्णु और उनकी माया को प्रतिष्ठापित करना इस पुराण का लक्ष्य प्रतीत होता है। असम्भव नहीं है कि मूल रूप में यह 'कालिका-पुराण' शाक्त रहा हो, किन्तु बाद में लगभग एक हजार ईसवी के समीप इसका वैष्णवीकरण कर दिया गया हो। बङ्गाल और आसाम में यह युग शाक्तों और वैष्णवों के मध्य संघर्ष का था भी।

'कालिका-पुराण' का वर्तमान स्वरूप

पुराण-साहित्य में 'कालिका-पुराण' का विशिष्ट और महत्त्व-पूर्ण स्थान है। शक्ति-पूजा को आधार बना कर लिखे गए पुराणों में इसका स्थान मूर्धन्य है। डा० हाजरा ने ऐसे अनेक निबन्ध-ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिनमें 'कालिका-पुराण' के श्लोक उद्धृत मिलते हैं। इनमें प्रमुख हैं—

१ लक्ष्मीधर-रचित 'कल्प-तरु', २ 'याज्ञवल्क्य स्मृति' की 'अपरार्क-टीका', ३ वल्लाल-सेन कृत 'दान-सागर', ४ हेमाद्रि-कृत 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि', ५ श्रीदत्त उपाध्याय कृत 'समय-प्रदीप' एवं 'आचार-दर्श', ६ चन्द्रशेखर-प्रणीत 'कृत-रत्नाकर' एवं 'गृहस्थ-रत्नाकर', ७ मदनपाल-रचित 'मदन-पारिजात', ८ माधवाचार्य-कृत 'काल-निर्णय' और 'पाराशर-स्मृति'-भाष्य, ९ विद्यापति-कृत 'गङ्गा-वाक्यावलि', १० वाचस्पति मिश्र कृत 'द्वैत-निर्णय', ११ 'कृत्य-चिन्तामणि' एवं 'शुद्धि-चिन्तामणि', १२ मदन सिंह देव-कृत 'मदन-रत्न-प्रदीप', १३ रुद्रधर-कृत 'शुद्धि-विवेक' और १४ नरसिंह बाजपेयी कृत 'नित्याचार-प्रदीप'।

उक्त ग्रन्थों में यत्र-तत्र उद्धृत श्लोक 'कालिका-पुराण' के बतलाये गये हैं, यद्यपि उपलब्ध 'कालिका-पुराण' में ये श्लोक नहीं मिलते। पुराण का जो संस्करण इस समय उपलब्ध है, उसके उद्धरण उक्त निबन्ध-ग्रन्थकारों के अतिरिक्त अन्य प्रख्यात ग्रन्थकारों ने भी अपने ग्रन्थों में दिए हैं। निबन्धकार हैं—१ शूलपाणि, २ विद्यापति, ३ श्रीनाथ, ४ गोविन्दानन्द, ५ रघुनन्दन, ६ कृष्णानन्द आगम-वागीश, ७ गजाधर, ८ मित्र मिश्र, ९ अनन्त भट्ट, १० कमलाकर भट्ट और ११ नन्द पण्डित। इससे 'कालिका-पुराण' की प्रामाणिकता और प्रसिद्धि का तो पता चलता ही है, साथ ही यह भी अनुमान होता है कि सम्भवतः इस पुराण का कोई अन्य संस्करण रहा होगा, जो आजकल उपलब्ध नहीं है।

'कालिका-पुराण' पञ्च-लक्षण पुराण नहीं है, क्योंकि इसमें वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित में से किसी भी अङ्ग का विशद या संक्षिप्त वर्णन नहीं मिलता। यह स्वतन्त्र शैली का पुराण है, जो पुराण-गाथाओं से प्रायः रहित और साम्प्रदायिक उपासना-पद्धति का प्रतिष्ठापक है। इसकी गणना उप-पुराणों में की जाती है। शैव-शाक्त उप-पुराणों के अन्तर्गत इसका महत्त्व सर्वथा निर्विवाद है।

'कालिका-पुराण' के प्रस्तुत संस्करण में ८,३९४ श्लोक हैं, जो ९० अध्यायों में विभक्त हैं। वर्ण्य-विषय, वक्ता तथा श्रोता की दृष्टि से हम इसे 'पूर्वार्ध' और 'उत्तरार्ध' दो भागों में बाँट सकते हैं। पुराण के प्रथम ४५ अध्यायों में शङ्कर और सती तथा शङ्कर और पार्वती का लोक-प्रसिद्ध आख्यान वर्णित है। बीच-बीच में विष्णु, शिव और महा-माया आदि की स्तुतियाँ तथा अन्य वर्णन भी हैं। अन्तिम ४५ अध्यायों में कामाख्या देवी की पूजा, प्रतिष्ठा का विधि-विधान बड़े व्यापक रूप में वर्णित है। कामाख्या के साथ ही त्रिपुरा देवी की उपासना-पद्धति भी तान्त्रिक शैली में उपलब्ध है। पुराण का यही भाग इसकी अपनी विशेषता है, क्योंकि इसमें शक्ति-उपासना और पूजा का व्यापक एवं विशद वर्णन है। निबन्ध-ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में इसी खण्ड से उद्धरण लिए हैं।

महा-पुराणों की तालिका के अन्तर्गत 'कालिका-पुराण' का नाम नहीं है, किन्तु ऐसा लगता है कि प्राचीन काल के बहुत से विद्वान् इसे महा-पुराण मानते थे और यही मूल 'भागवत-पुराण' माना जाता था। १३ वीं शती में लिखे गए हेमाद्रि के प्रसिद्ध 'धर्म-चिन्तामणि', जिल्द १, पृष्ठ ५३ में कहा गया है—'यदिदं कालिकाख्यानं मूलं भागवतं स्मृतम्।'

किन्तु १२ वीं शताब्दी के गहड़वाल-वंशीय राजा जयचन्द्र के धर्माध्यक्ष लक्ष्मीधर के 'कृत्य-कल्पतरु' (खण्ड–१, पृ० ३०) में इसे उप-पुराण स्वीकार किया गया है। कहा है—'अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यद्धि दृश्यते, विजानीध्वं मुनि-श्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्। उद्भूतं तथा कालिका-पुराणादि।'

इस प्रकार लक्ष्मीधर के मत से 'कालिका-पुराण' का उद्भव १८ पुराणों से ही हुआ है। यह बात 'कृत्य-रत्नाकर' में चन्द्रशेखर ने भी स्वीकार की है। १२ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में बंगाल में प्रसिद्ध निबन्ध-कार वल्लाल सेन हुए। उन्होंने अपने 'दान-सागर' नामक ग्रंथ (पृ० ३) में दान-विधि के प्रतिपादक उप-पुराणों में 'साम्ब पुराण' और 'कालिका-पुराण' का भी उल्लेख किया है—'उक्तान्युप-पुराणानि व्यक्त-दान-विधीनि च, आद्यं पुराणं साम्बं कालिका-द्वयमेव च।'

पहले बता चुके हैं कि उप-पुराणों की सभी सूचियों में 'कालिका-पुराण' का नाम अवश्य मिलता है, इसलिये यह तो निश्चित ही है कि यह उप-पुराण है।

यह भी बता चुके हैं कि अनेक निबन्धकारों ने अपने निबन्ध-ग्रन्थों में 'कालिका-पुराण' से जिन अंशों को उद्धृत किया है, वे इस पुराण की प्राप्त प्रति में नहीं मिलते। ऐसे प्रकरण प्रायः पात्रों के दान, वर्णाश्रम-धर्म, शिव और कालिका की पूजा, व्रत, श्राद्ध और शौच आदि से सम्बन्धित हैं। उपलब्ध 'कालिका-पुराण' में ये प्रकरण दिए ही नहीं गए हैं। अतः यह प्रश्न उठता है कि क्या उपलब्ध 'कालिका-पुराण' इसी नाम से अभिहित था? यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि निबन्ध-ग्रंथों में जो अंश 'कालिका-पुराण' के नाम से उद्धृत हैं, उनमें तान्त्रिक प्रभाव कहीं नहीं है। वल्लाल-सेन ने 'दान-सागर' में दान-विषयक ग्रंथों की चर्चा करते हुये कहा है कि 'मैं उन्हीं ग्रन्थों का उल्लेख करता हूँ और दान-विधि-विषयक उन्हीं पुराणों को प्रामाणिक मानता हूँ, जिनमें पाखण्ड-शास्त्र अर्थात् तान्त्रिक प्रभाव नहीं है।' तान्त्रिक प्रभाववाले ग्रन्थों को वे अप्रामाणिक मानते हैं। इसीलिये उन्होंने 'भविष्य-पुराण' का उपयोग भी केवल सप्तमी-कल्प तक ही किया है और अष्टमी तथा नवमी-कल्प-वाले परिच्छेदों को यह कहकर छोड़ दिया है कि वे पाखण्डियों अर्थात् तान्त्रिकों के प्रभाव से ग्रस्त हैं।

यह उल्लेखनीय है कि एक ओर वल्लाल सेन जहाँ 'देवी-पुराण' को इसलिये स्वीकार नहीं करते कि वह पाखण्ड-शास्त्र का अनुयायी होने के कारण कश्मल-कर्म से युक्त है और 'भविष्य-पुराण' के अष्टमी तथा नवमी-कल्पों का भी परित्याग इसलिए करते हैं कि वे पाखण्डियों से ग्रस्त हैं, वहाँ दूसरी ओर वे 'कालिका-पुराण' को तान्त्रिक प्रभाव से प्रभावित नहीं बताते और कहीं भी उसे पाखण्डी-ग्रस्त नहीं कहते। इससे भी यह सङ्केत मिलता है कि वल्लाल सेन के समय में प्रचलित 'कालिका-पुराण' आज के 'कालिका-पुराण' से भिन्न रहा होगा, जो सम्भवतः आगे चलकर लुप्त हो गया। सम्भव है कि उप-पुराणों की सूची में जहाँ-जहाँ 'कालिका-पुराण' का उल्लेख मिलता है, वहाँ इसी लुप्त उप-पुराण का उल्लेख हो, क्योंकि रघुनन्दन ने भी अपने 'दुर्गा-पूजा-तत्त्व' ग्रन्थ में इसे 'दुष्प्राप्य-कालिका-पुराणा-न्तरेऽपि' कहा है। इससे भी लगता है कि रघुनन्दन को वर्तमान 'कालिका-पुराण' से भिन्न किसी अन्य 'कालिका-पुराण' की जानकारी थी, जो उनके समय में ही दुर्लभ हो गया था।

अनुमान होता है, कि १२ वीं-१३ वीं शताब्दी में एक अन्य 'कालिका-पुराण' अवश्य विद्यमान था, जिसमें शैव-मत का प्रतिपादन रहा होगा और वर्तमान पुराण से भिन्न योग-माया शिव की शक्ति के रूप में वर्णित रही होंगी। निश्चय ही इसमें तान्त्रिक प्रभाव का सर्वथा अभाव रहा होगा। प्रचलित 'कालिका-पुराण' में एक असङ्गत बात यह लगती है कि इस पर वैष्णव आगमों का पूरा प्रभाव है।

शाक्त तन्त्रों के साथ यह बात मेल नहीं खाती। इसमें योग-माया नारायण या विष्णु की शक्ति कही गयी हैं—'तत्र गत्वा जगद्-धात्रीं विष्णु-मायां जगन्मयीम्।' (का० पु०, ५-१४)

वर्तमान 'कालिका-पुराण' में नारायण की पूजा का विधान पाञ्चरात्र-विधि से मिलता है। इस प्रकार इसमें तान्त्रिक और वैष्णव दोनों प्रभावों का मिश्रण है, क्योंकि देवी-पूजा के प्रसङ्ग में मन्त्र, यन्त्र, मुद्रा, कवच आदि सारे तान्त्रिक विधानों का प्रामुख्य दिखाई देता है।

अब प्रश्न उठता है कि प्राचीन 'कालिका-पुराण' का क्या हुआ? पण्डित बलदेव उपाध्याय ने श्री विश्वनारायण शास्त्री द्वारा सम्पादित 'कालिका-पुराण' की भूमिका में कहा है कि उन्होंने इस पुराण की एक अपूर्व प्रति वाराणसेय संस्कृत विश्व-विद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री बलराम शास्त्री के पास देखी है, जिसमें तृण-विन्दु और अनिलाद के बीच ही मुख्य सम्वाद वर्णित है। आदि से अन्त तक तृणविन्दु प्रश्न करते हैं और अनिलाद उसका उत्तर देते हैं।

नान्यदेव, हेमाद्रि और चण्डेश्वर आदि के अनुसार भी ये ही दोनों 'कालिका-पुराण' के वक्ता और श्रोता हैं। इस प्रति में शङ्कर और सती तथा शङ्कर और पार्वती एवं स्कन्द के जन्म से लेकर स्वर्ग-गमन तक की कथा विस्तार-पूर्वक दी हुई है। अवान्तर कथाएँ, स्तुतियाँ, तीर्थ-माहात्म्य और पूजन आदि के भी प्रचुर प्रसङ्ग हैं किन्तु तान्त्रिक प्रभाव का कहीं स्पर्श तक नहीं है। तीर्थ-माहात्म्य में उन स्थानों का उल्लेख है, जहाँ देवी का निवास है। इन्हें 'कुचर तीर्थ' कहते हैं। इनमें गंगा-द्वार, कुशावर्त और नीलाचल प्रमुख हैं। शिव, स्कन्द और अर्ध-नारीश्वर की स्तुति भी सरल भाषा में मिलती है। इस पर कहीं तान्त्रिक छाया नहीं है। कई अध्यायों में इसे 'काली-पुराण' कहा है। ऐसा लगता है कि 'कालिका-पुराण' एक से अधिक रहे हैं; जिनमें सबसे पर-वर्ती वर्तमान 'कालिका-पुराण' है।

'कालिका-पुराण' का रचना-काल

'कालिका-पुराण' के रचना-काल के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है, क्योंकि ग्रन्थ के भीतर रचना-काल का कोई भी संकेत प्राप्त नहीं होता। बाह्य साक्ष्य की दृष्टि से देखें, तो इसका सर्व-प्रथम निर्देश नान्यदेव के 'भरत-भाष्य' में मिलता है। 'भरत-भाष्य' की हस्त-लिखित प्रति मद्रास राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है। इसके १३८ वें पृष्ठ पर लिखा है—'इति रोविन्दकं समाप्तं कालिकाख्य-पुराणे। यत्-पुराण-पुरुषेरित-रोविन्दकाभिधं गीतं नान्य- मही-भुजा। इति रोविन्दकं प्रोक्तं स्यादुत्तर-मतः पश्य।'

'भरत-भाष्य' के रचयिता मिथिला के राजा नान्यदेव ही हैं। सिलवाँ लेवी के अनुसार नान्यदेव का समय १०९७ से लेकर ११३३ ई० है। इससे इतना निश्चित है कि 'कालिका-पुराण' का रचना-काल १०५० ई० से बाद नहीं हो सकता। यह हुई इसकी निम्न-काल-मर्यादा। उपरि-तन काल-मर्यादा की दृष्टि से देखें, तो हेमाद्रि का यह उद्धरण सामने आता है—'यदिदं कालिकाख्यं च मूलं भागवतं स्मृतम्।'

अर्थात् 'कालिका-पुराण' ही मूल भागवत है। यह बात तभी कही गई होगी, जब 'भागवत पुराण' की प्रसिद्धि सब ओर फैल चुकी होगी। 'भागवत' का रचना-काल लगभग छठी शताब्दी ई० माना जाता है। रचना-काल के बाद लगभग सौ वर्ष उसे प्रसिद्ध होने में लग गए होंगे। इसलिये 'कालिका-पुराण' को अधिक-से-अधिक ७ वीं शताब्दी में रचित मान सकते हैं।

इस पुराण से जिन दो लेखकों ने विशेष उद्धरण दिए हैं, उनमें एक हैं बंगाली विद्वान् लेखक शूलपाणि। उन्होंने अपने 'दुर्गोत्सव-विवेक' में इसे उद्धृत किया है। दूसरे हैं मैथिल विद्वान् और कवि विद्यापति। उन्होंने अपनी 'दुर्गा-भक्ति-तरङ्गिणी' में इससे पूजा-विषयक श्लोक उद्धृत किए हैं। ये दोनों पूर्वांचल के विद्वान् हैं। 'कालिका पुराण' की रचना से स्पष्ट होता है कि इसका लेखक कालिदास के 'कुमार-सम्भव' और माघ के 'शिशुपाल-वध' से परिचित है। माघ का समय लगभग ७०० ई० है। इसलिए भी यह ७५०ई० से पुराना कदापि नहीं हो सकता। इन सब बातों को देखते हुए हम 'कालिका-पुराण' का निर्माण-काल ९ वीं, १० वीं शताब्दी के लगभग मान सकते हैं।

कालिका-पुराण का रचना-स्थान

'कालिका-पुराण' के रचयिता पूर्वी भारत, विशेषतः काम-रूप-प्रदेश से घनिष्ठ रूप से परिचित हैं। इस क्षेत्र की नदियों, सरोवरों, तीर्थों, कुण्डों और पर्वतों का वर्णन इसमें बहुत विस्तार के साथ किया गया है। साथ ही वे विद्वान्, जिन्होंने इसका सर्वाधिक उपयोग किया है, बिहार या बङ्गाल के निवासी हैं। इससे भी पता लगता है कि इसके रचयिता बिहार या बङ्गाल के निवासी थे।

वर्तमान 'कालिका-पुराण' और 'देवी-भागवत' में अद्भुत सैद्धान्तिक सादृश्य हैं। इनके अनेक वर्णनों में भी समानता है। 'देवी-भागवत' आकार में बड़ा है। उसमें ३१८ अध्याय हैं और वह 'भागवत' के समान ही १२ स्कन्धों में विभक्त है। ३१८ अध्यायों और १८,००० श्लोकोंवाला 'देवी-भागवत' 'कालिका-पुराण' से कहीं अधिक बड़ा है। 'देवी-भागवत' के सर्ग, प्रति-सर्ग, वंश, वंशानुकीर्तन और मन्वन्तर-वर्णन में पाँचों पुराण-लक्षण मिलते हैं। 'कालिका-पुराण' में केवल ९० अध्याय और ८, ३९४ श्लोक हैं। 'देवी-भागवत' में उसकी अपनी सर्गादि की निजी परिभाषा है, जिसके अनुसार भगवती जगदम्बा ही मूल-शक्ति हैं, सगुण-निर्गुण मुक्ति प्रदान करनेवाली और माया-स्वरूपिणी हैं। उन्हीं की सात्विकी, राजसी और तामसी शक्तियाँ लक्ष्मी, सरस्वती और महा-काली के रूप में प्रकट होती हैं। 'कालिका-पुराण' में भी विष्णु-माया का यही स्वरूप है। यद्यपि इसमें पुराण के पाँचो लक्षण उपलब्ध नहीं हैं। 'देवी-भागवत' में १८ पुराणों के नाम भी दिए हुए हैं और उनकी श्लोक-संख्या भी। इसके अनुसार पुराणों और उनकी श्लोक-संख्या निम्न प्रकार है—

मत्स्य-पुराण १४ हजार श्लोक, भविष्य १ हजार ४ सौ ५०, वामन १० हजार, विष्णु २३ हजार, अग्नि १६ हजार, पद्म ५५ हजार, गरुड़ १९ हजार, स्कन्द ८१ हजार, मार्कण्डेय ९ हजार, ब्रह्म-वैवर्त १८ हजार, वायु २४ हजार ६ सौ, वराह २४ हजार, नारद २५ हजार, लिङ्ग ११ हजार, कूर्म १७ हजार।

'देवी-भागवत' के अनुसार निम्नलिखित उप-पुराण हैं—

१ सनत्-कुमार पुराण, २ नृसिंह, ३ नारद, ४ शिव, ५ दुर्वासा, ६ मनु, ७ उशना, ८ वरुण, ९ कालिका, १० साम्ब, ११ नन्दि, १२ सौर, १३ पराशर, १४ आदित्य, १५ माहेश्वर, १६ भागवत और १७ वशिष्ठ।

'कालिका-पुराण' में मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिंह अवतारों की चर्चा है। 'देवी-भागवत' में भी इन चारों देवताओं की स्तुतियाँ (१०-५-४०३ से ७) हैं।

'देवी-भागवत' का रचना-स्थान वङ्ग-प्रदेश सर्व-मान्य है। अतः 'कालिका-पुराण' का रचना-स्थल भी इसी के समीप होना चाहिए।

'तन्त्र' और 'कालिका-पुराण'

इस प्रसङ्ग में यह भी विचारणीय है कि शङ्कराचार्य ने अपने 'शाङ्कर भाष्य' (२-१-१) में सांख्य-दर्शन को 'तन्त्र' कहा है और 'महा-भारत' ने न्याय, धर्म-शास्त्र आदि के लिये 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग किया है किन्तु बाद में सामान्यतया इस शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ में गुप्त साधना का उपदेश करनेवाले धार्मिक ग्रन्थों के लिये होने लगा। इन्हें 'आगम' भी कहते हैं। तन्त्र-ग्रन्थों में १ पटल, २ पद्धति, ३ कवच, ४ सहस्रनाम और ५ स्तोत्र—ये उपासना के पाँच अङ्ग मिलते हैं। 'वाराही-तन्त्र' में कहा है कि आगम के सात लक्षण हैं—१ सृष्टि, २ प्रलय, ३ देवार्चन, ४ सर्व-साधन, ५ पुरश्चरण, ६ षट्-कर्म (शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण) तथा ७ ध्यान-योग। 'तन्त्र' की विशेषता है क्रिया।

'तन्त्र' दो प्रकार के हैं—वैदिक और वेद-बाह्य। महिम्न-स्तोत्र में पाशुपत, शैव-सिद्धान्त, पाञ्चरात्र और वैखानस आगमों को वेद के बाहर बतलाया है। शङ्कराचार्य ने भी ब्रह्म-सूत्र-भाष्य (२-२-४२ से ४५) में पाञ्चरात्र के मूल सिद्धान्त चतुर्व्यूह-वाद को असङ्गत कल्पना कहा है। फिर भी 'तन्त्र' के अधिकांश सिद्धान्त और उपासना-पद्धतियाँ वेदानुकूल हैं। सम्भवतः वैदिकों द्वारा तन्त्रों के विरोध का कारण शाक्त-मत की 'पञ्च-मकार-योजना' रही है। यह वामाचार की गूढ़ उपासना-विधि है, जिसका केन्द्र काम-रूप का कामाख्या-पीठ रहा है।

तन्त्र-ग्रन्थों के अनुसार कलियुग में आगम के अतिरिक्त उद्धार का अन्य कोई मार्ग नहीं है। 'महा-निर्वाण' और 'कुलार्णव तन्त्र' में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है।

पुराणों में तान्त्रिक अनुष्ठानों के विषय में अलग-अलग मत प्राप्त होते हैं। 'देवी-भागवत' के अनुसार तन्त्रों के कोई-कोई अंश वेद के अनुकूल हैं। उनके ग्रहण में कोई दोष नहीं है, किन्तु वेद से भिन्न अनुष्ठानों में द्विजों का अधिकार नहीं है। इसलिए ऐसी तान्त्रिक क्रियाओं का अधिकारी वेद-बाह्य ही हो सकता है।

पुराणों में तान्त्रिक विषयों का प्रवेश अष्टम शती के बाद ही प्रारम्भ हुआ क्योंकि इससे पहले पुराणों में तान्त्रिक पूजा के दर्शन नहीं होते। पुराणों में पहले किसी विशेष देवता के मुद्रा, न्यास आदि का वर्णन किया गया और फिर पुराणों ने स्मृति-कर्मों के साथ-साथ तान्त्रिक विधियों का निरूपण भी निर्विरोध स्वीकार कर लिया। १० वीं-११ वीं शती में पुराणों ने तन्त्रों को अपना अङ्ग ही बना लिया। 'गरुड़' और 'अग्नि-पुराण' में प्राप्त तान्त्रिक विधियाँ इस बात की प्रमाण हैं, किन्तु वायु, भागवत, विष्णु और मार्कण्डेय आदि में तन्त्र का समावेश बिल्कुल नहीं है।

हाँ, उप-पुराणों में अवश्य तान्त्रिकी पूजा का व्यापक प्रभाव मिलता है। इसका कारण यह है कि उप-पुराणों का निर्माण किसी एक देवता के पूजा-विधान के निमित्त ही हुआ करता था। 'देवी-भागवत' इसका जीता-जागता दृष्टान्त है। यह एक उप-पुराण ही है किन्तु शाक्त लोगों में इसकी प्रतिष्ठा पुराण से कम नहीं है। इसका सारा वातावरण ही तन्त्र है। 'कालिका-पुराण' की भी यही स्थिति है। दोनों में नाना-रूपों में और विविध स्थानों में शक्ति का प्राधान्य बतलाया है। दोनों में विभिन्न मासों और तिथियों में वैदिक और तान्त्रिक मन्त्रों के द्वारा देवी की पूजा निष्पन्न करने का आग्रह है और बाह्य पूजा का विस्तार से वर्णन किया गया है। दोनों में वर्णित देवियों का पूजा-क्षेत्र भी बङ्गाल और आसाम का प्रदेश है।

१० : 'कौल-कल्पतरु' चण्डी

'कालिका-पुराण' के ७० वें अध्याय के छठे श्लोक में पूजा के लिए जिन फलों को उत्तम बताया है, वे हैं—अक्षोट, पिण्ड-खजूर, करुण, श्रीफल, औदुम्बर, पुन्नाग, माधव और कर्कटी। इस श्लोक पर टीका करते हुए विद्यापति ने कहा है—'करुण गौड़-देशे प्रसिद्धम्' अर्थात् यह पूजा का फल गौड़ देश में प्रायः मिलता है। गौड़ देश बङ्गाल का ही एक भाग था। इससे भी प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता पूर्वी विहार या पश्चिमी बङ्गाल के निवासी रहे होंगे। ग्रन्थ पर काली-पूजा के साथ-साथ जो वैष्णव प्रभाव दिखाई देता है, वह भी इस बात का पोषक है, क्योंकि बङ्गाल में १० वीं-११ वीं शताब्दी में ये दोनों प्रभाव एक साथ काम करते रहे हैं।

'कालिका-पुराण' के रचनाकार

'कालिका-पुराण' के रचयिता के विषय में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं है। सम्भव है, अन्य पुराणों के समान यह भी अनेक व्यक्तियों की रचना हो।

'कालिका-पुराण' की संरचना

संरचना की दृष्टि से, जैसा कि पहले बताया है, इस पुराण को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में बाँटा जा सकता है। पूर्वार्द्ध में प्रश्न करनेवाले ऋषि-गण हैं और उत्तर-दाता हैं मार्कण्डेय मुनि।

प्रथम अध्याय में विष्णु और उनकी माया की स्तुति के बाद ब्रह्मा की मानसी कन्या सन्ध्या और मानस-पुत्र कामदेव की उत्पत्ति का वर्णन है। तृतीय अध्याय में दक्ष की कन्या रति का जन्म और कामदेव द्वारा उसके ग्रहण का उल्लेख है। चतुर्थ अध्याय में कामदेव ब्रह्मा के निःश्वास से उत्पन्न वसन्त को साथी के रूप में ग्रहण करते हैं। पञ्चम अध्याय में ब्रह्मा विष्णु-माया से प्रार्थना करते हैं कि वे शिव को मोहित करें। इसमें योग-माया के स्वरूप का भी वर्णन है। योग-माया का ही नाम काली था। उनकी पूजा का प्रतिपादक होने के कारण ही यह पुराण 'काली-पुराण' या 'कालिका-पुराण' कहलाता है।

छठे अध्याय में शिव के गणों के रूप और योग-माया की महिमा का वर्णन है। ७ वें अध्याय में शिव को मोहित करने के लिए काम अपने मार-गणों को उत्साहित करता है। ८ वें अध्याय में दक्ष द्वारा महा-माया की स्तुति और उन्हें प्रसन्न कर पुत्री-रूप में प्राप्त करने का उल्लेख है। ९ वें अध्याय में सती द्वारा शिव की आराधना और ब्रह्मा द्वारा सती को पत्नी-रूप में ग्रहण करने के लिये शिव से प्रार्थना है। १० वें अध्याय में इसी बात के लिये ब्रह्मादिक देवता शिव से प्रार्थना करते हैं।

११ वें अध्याय में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का एकत्व प्रतिपादित किया गया है। १२ वें में विस्तार-सहित सृष्टि का वर्णन है और काल तथा माया का भी वर्णन है। १३ वें से १८ वें तक शिव और सती का चरित-वर्णन है। इसके अन्तर्गत सती-विवाह, दक्ष का यज्ञ-विध्वंस, सती-दाह, शिव द्वारा सती के शिव को लिए घूमना, फिर सती के एक-एक अङ्ग का भिन्न-भिन्न स्थानों पर गिरना और उन स्थानों के तीर्थ बन जाने की कथा है। १९ वें से २२ वें तक ब्रह्मा शिव को शान्त करने का उपक्रम करते हैं। इस प्रसङ्ग में तीन अवान्तर कथाएँ भी दी गई हैं—(१) क्षिप्रा के उद्गम की कथा, (२) अरुन्धती के जन्म, तप और वशिष्ठ के साथ उनके विवाह की कथा, (३) दक्ष द्वारा चन्द्रमा को शाप, ब्रह्मा द्वारा उनकी रोग-मुक्ति और चन्द्रमा की उत्पत्ति।

२४ वें अध्याय में ब्रह्मा द्वारा योग-माया की स्तुति, जिससे वे शिव के हृदय में अपना आवास छोड़ दें। इसमें शिव का तपस्या में लीन हो जाना भी वर्णित है। २४ वें से लेकर ३५ वे अध्याय तक बहुत सी अवान्तर कथाएँ हैं—जैसे सृष्टि-वर्णन, वराह की उत्पत्ति, गोविन्द की स्तुति, देवों द्वारा वराह के सङ्कट से बचने के लिए विष्णु की प्रार्थना, वराह-शरीर से यज्ञ के विभिन्न अङ्गों के उदय की कथा, जो यज्ञ-वराह के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मत्स्यावतार, अकाल-प्रलय, प्रलयान्तर सृष्टि आदि के वर्णन मिलते हैं।

३६ वें तक पृथ्वी और वराह के पुत्र नरक की कथा है, जिसमें उसके जन्म, अभिषेक, तप, राज्य और चरित का वर्णन है। ४१ वें से ४५ वें तक शिव-पार्वती का प्रसिद्ध आख्यान है। पार्वती हिमालय की पुत्री के रूप में जन्म लेती हैं। नारद उनके भावी पति की सूचना देते हैं। कामदेव शिव की समाधि को भंग करने का यत्न करते हैं। मदन-दहन होता है। पार्वती घोर तपस्या करती हैं और अन्त में शिव के साथ उनका विवाह होता है। 'कालिका-पुराण' का पूर्वार्द्ध यहीं समाप्त समझा जाना चाहिए।

४६ वें अध्याय से 'कालिका-पुराण' का उत्तरार्द्ध प्रारम्भ होता है। यह भाग प्रथमार्द्ध से पूर्णतः भिन्न है। विषय-वस्तु और निरूपण-शैली दोनों दृष्टियों से यह पूर्व-भाग से सर्वथा पृथक् लगता है। प्रथम भाग के प्रश्न-कर्ता कमठादि मुनि हैं और उत्तर-दाता मार्कण्डेय मुनि, किन्तु द्वितीय भाग में प्रश्न-कर्ता हैं सगर और उत्तर-दाता हैं और्व। इस भाग का मुख्य वर्ण्य विषय है—भैरव और वेताल की शिव-पुत्र के रूप में उत्पत्ति और सिद्धि-प्राप्ति। शिव पौष्य के राजा के पुत्र चन्द्रशेखर के रूप में और पार्वती तारावती के रूप में जन्म लेते हैं। इनकी विवाह-कथा तथा कपोत मुनि का वर्णन भी इस प्रसङ्ग में है। चन्द्रशेखर का भोग-स्थान करवीरपुर (सम्भवतः वर्तमान कोल्हापुर-महाराष्ट्र) है, जो महा-लक्ष्मी का सुप्रसिद्ध क्षेत्र है। यह कथा ५० वें अध्याय तक वर्णित है।

५१ वें अध्याय में वशिष्ठ द्वारा शिव की पूजा-विधि है। सम्मद, सन्दोह, नाद, गौरव और प्रासाद-मन्त्रों के द्वारा पूजा का विधान है। शिव के १ सद्योजात, २ वामदेव, ३ अघोर, ४ तत्पुरुष और ५ ईशान—इन पाँच मुखों का वर्णन और वेताल भैरव द्वारा पञ्च-मुख शिव की स्तुति इस अध्याय के अन्तर्गत है।

५२ वें से ५६ वें अध्याय तक 'वैष्णवी तन्त्र' नामक पूजा-विधान का वर्णन है। यह पूजा-विधि 'अष्टादश पटल' द्वारा निर्णीत बतलाई गई है। ५२ वें अध्याय की पुष्पिका ही है—'महामाया-कल्पे अष्टादश पटले।' इसी में वैष्णवी देवी का अष्टाक्षर मन्त्र 'ॐ ह्रींश्रीं वैष्णव्यै नमः' बताया गया है। भूमि-शोधन, दिग्-बन्ध, मण्डल-रचना, अर्घ्य-पात्र में गन्ध-पुष्प छोड़ना, अङ्ग-न्यास, कर-न्यास, पूजा के उपकरणों का शोधन, चौंसठ योगिनियों का पूजन, अष्ट-योगिनियों का पूजन, बलि-प्रदान, माला तथा जप-विधान, समर्थ मन्त्र का जप और योनि-मुद्रा—ये सब पूजाङ्ग इन अध्यायों में वर्णित हैं। इसी में देवी-कवच की भी चर्चा है।

५७ वें अध्याय में उत्तर-मन्त्र के अनुसार विस्तार-पूर्वक पूजा का प्रकार, कामराज मन्त्र और वाग्भव बीज वर्णित हैं। ५८ वें से ६१ वें अध्याय तक 'देवी-तिथियों' का वर्णन है। इसमें विशेष तिथियों पर कामाख्या देवी की पूजा बताई गई है, जो मूल-मूर्ति महा-माया और योग-निद्रा के नाम से भी अभिहित की गई हैं। वैष्णवी तन्त्र-मन्त्र भी उन्हीं का है। कामाख्या ही प्रधान देवी हैं, जो विविध कार्यों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करती हैं। इन अध्यायों में कामाख्या के विशिष्ट स्वरूपों का

वर्णन है। चण्डिका का पूजा-विधान, उग्रचण्डादि आठ शक्तियों से परिवृत देवी की पूजा, दुर्गोत्सव, महिषासुर की कथा, भद्र-काली और अष्टादश-भुजा, षोडश-भुजा एवं दश-भुजा देवी के शारदीय उत्सव का वर्णन, पूजन, विसर्जन और उत्सव का विशद विधान इन अध्यायों में मिलता है।

६२ वें अध्याय में 'कामाख्या-पूजा-तन्त्र' है। इसमें नीलगिरि पर स्थित कामाख्या देवी की पूजा-अर्चा का विस्तृत वर्णन है। ६३ वें अध्याय में त्रिपुरा-तन्त्रानुसार त्रिपुरा और बटुक आदि भैरवों की पूजा का उल्लेख है। ६५ वें अध्याय में 'कामेश्वरी-तन्त्र' के अनुसार पूजन-विधि वर्णित है। षट्-कोण रक्त-मण्डल के उत्तर में जालन्धर-पीठ, पश्चिम में ओड्र-पीठ, दक्षिण में कामरूप-पीठ के अङ्कन के साथ कामेश्वरी के आवाहन-पूजन और विसर्जन की विधि बतलाई गई है।

६५ वाँ अध्याय 'शारदा तन्त्र' के अनुसार है, जिसमें नवरात्र में दश-मुख शारदा के पूजन का विधान है। ६६ वें अध्याय में नमस्कार एवं मुद्रा का चित्रण है। सात प्रकार के नमस्कार एवं १०८ प्रकार की मुद्राओं में ५५ मुद्राएँ उपादेय हैं। इन सबके नाम और लक्षण बताये गए हैं।

६७ वें अध्याय में बलि-प्रदान का विशद विवेचन है। इसके अन्तर्गत नर-मांस तक की बलि का विधान है। किस देव या देवी को किस पशु की बलि देनी चाहिए, इसके मन्त्र और नियम भी बतलाए हैं। ६८वें अध्याय से ७१वें अध्याय तक षोडश उपचारों का वर्णन है। ७२वें अध्याय में कामाख्या देवी की महिमा एवं उनके कवच का वर्णन है। ७३ वें अध्याय में मातृका-न्यास, ७४वें अध्याय में विभिन्न देवों के यन्त्र, मन्त्र, जप और ध्यान की विस्तृत चर्चा है। ७५ वें अध्याय में सिद्ध, सुसिद्ध, साध्य और शत्रु-मन्त्रों द्वारा सिद्धि की चर्चा, वशिष्ठ के उपदेश, वेताल भैरव द्वारा कामाख्या का पूजन और शिव की गीति-मयी स्तुति है।

७७ वें से ८० वें अध्याय तक काम-रूप मण्डल का विशद भौगोलिक वर्णन है और नदियों तथा कुण्डों में स्नान के माहात्म्य का प्रतिपादन, वासुदेवायतन की पूजा और नारद द्वारा प्रोक्त पाञ्चरात्र-मन्त्रों के ग्रहण का उपदेश है। ८१ वें अध्याय में वशिष्ठ के शाप के कारण कामरूप में वामाचार के प्रचार का उल्लेख है और बताया गया है कि इस प्रकार विशुद्ध वैष्णव भावापन्न काम-रूप में वामाचार का प्रचण्ड प्रचार हुआ।

८२ वें अध्याय में लौहित्य मद की उत्पत्ति की कथा है, जिसमें बताया गया है कि किसी प्रकार शान्तनु ने अपने लौहित्य नामक पुत्र को पर्वतों के बीच में रख दिया, जिसके उत्तर में कैलास, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में जाह्नवी और पूर्व में सम्वर्तक है। धीरे-धीरे लौहित्य पाँच योजन तक फैल गया।

८३ वें अध्याय में परशुराम का निरूपण है। ८५ वें अध्याय में राजाओं के कर्तव्य का वर्णन और उसके द्वारा करणीय उत्सवों और नीराजन-विधि का वर्णन है। पुण्य स्नान राजा का विशेष कर्तव्य है। ८७ वें अध्याय में शक्र-ध्वज के उत्थापन का विशिष्ट वर्णन है। ८८ वें अध्याय में राजा द्वारा ज्येष्ठ दशहरा के दिन विष्णु की इष्टि का और श्री-पञ्चमी के दिन लक्ष्मी के पूजन का विधान, राजा के लिए निषिद्ध कर्म, १२ प्रकार के पुत्रों, शूद्रों के आचार और अन्य कर्तव्यों का विवेचन इसमें मिलता है। ८९ वें अध्याय में अपुत्रता के दोषों का सोदाहरण वर्णन, खाण्डव दाह की कथा और भैरव की सन्तानों का वर्णन है।

९० वें अध्याय में वेताल की सन्तानों का वर्णन और 'कालिका-पुराण' की प्रशंसा है। इसे मन्त्र-मय पुण्य पुराण कहा है। मार्कण्डेय का कथन है कि इस पुराण को वशिष्ठ ने उनसे सुना और

पढ़ा था। उन्होंने इसे काम-रूप में छिपा रखा था और अब महर्षि लोग इसे प्रकाश में लाए हैं। अन्त में विष्णु और माया की स्तुति के साथ 'कालिका-पुराण' समाप्त होता है।

उपर्युक्त विषय-वस्तु एवं उसके निरूपण से इतना स्पष्ट है कि इस पुराण पर वैष्णव प्रभाव है। मूलतः पाञ्चरात्र के अनुसार वासुदेव-पूजन एवं शक्ति-उपासना में समन्वय स्थापित करनेवाला यह पुराण है। 'विष्णु-धर्मोत्तर' के राज-धर्म और इस पुराण के राज-धर्मों में न केवल सादृश्य ही है, अपितु यह भी कहा गया है कि 'मैंने (इस पुराण के रचयिता ने) ही पहले 'विष्णु-धर्मोत्तर' की रचना की और इस पुराण से पहले वहाँ इन्हीं राज-धर्मों का प्रतिपादन किया है।' इससे भी इस पुराण का वैष्णव तान्त्रिकों द्वारा निर्मित और उनसे प्रभावित होना सिद्ध होता है। एक प्रकार से यह पुराण वैष्णव, शैव और शाक्त सम्प्रदायों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न है। इसीलिए उसने वामाचार की निन्दा भी की है। कुल मिलाकर यह एक स्वतन्त्र शैली का और कट्टरता से मुक्त पुराण कहा जा सकता है।

प्रस्तुत लेख पं० बलदेव उपाध्याय द्वारा सम्पादित संस्करण पर आधारित है। अध्यायों एवं श्लोकों की संख्या उसी के अनुसार दी गई है। यद्यपि इस संस्करण का पाठ भी काफी अशुद्ध है, पर उसका आश्रय लेने के अतिरिक्त और उपाय भी नहीं था। यह संस्करण भी इस समय अप्राप्य है।

पुराण-तन्त्रपीठ

१२५ प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों द्वारा तान्त्रिक-साधना के महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन

भाग १ : सर्ग-काण्ड एवम् धर्म-काण्ड

मूल-मात्र : संस्कृत में

सुन्दर सजिल्द : 'चण्डी' के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ३०-०० रु०

भाग २ : अर्थ-काण्ड एवम् काम्य-काण्ड

मूल-मात्र

'चण्डी' के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ३०-०० रु०

भाग ३ : भक्ति-काण्ड

मूल-मात्र

मूल्य २०-०० रु०

महा-कवि श्रीकालादत्त नागर

आज से ६६ वर्ष पूर्व अपने आविर्भाव के साथ ही 'चण्डी' ने गोपनीयता के दुर्ग का भेदन कर कितने ही परम सिद्ध किन्तु 'गोपनीयं' की गुहा में छिपे कौल साधकों को लोक-हित में प्रकट होने को प्रेरित किया और उसके प्रवर्तक 'सरस्वती'-सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल ही यद्यपि उसका पूरा सम्पादन करते रहे किन्तु अपनी निःस्पृहता के कारण कभी उसमें अपना शुभ नाम सम्पादक-रूप में न छपने दिया, फिर भी उक्त महत्कार्य में आपके ही अनूठे व्यक्तित्व का यह प्रभाव था कि गुप्तावतार बाबा श्री, राष्ट्र-गुरु श्री स्वामी जी महाराज, परम पूज्या माई जी, स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती जैसी विभूतियों से भारत का अध्यात्म-जगत् परिचित हो सका। साथ ही नेपाल के धन शम्शेर जंग बहादुर राणा, उत्तराखण्ड (हिमालय) के पं० कालीचरण पन्त, पं० देवीप्रसाद घिल्डियाल, पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, काशी के पं० कन्हैयालाल दीक्षित ज्योतिषी, पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, जयपुर के पं० हरि-शास्त्री दाधीच, मिथिला के श्री श्यामानन्दनाथ जैसे श्रेष्ठ साधकों का कृतित्व सामने आ पाया।

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी की चलाई वही परम्परा सतत 'चण्डी' के द्वारा आज भी अतीत और वर्तमान के रहस्य का भेदन करने में हमारी सहायता कर रही है। प्रस्तुत लेख द्वारा पाठक एक ऐसे महान् कौल साधक को पहले पहल जानेंगे, जिसकी तुलना संस्कृत के विश्व-विख्यात महा-कवि कालिदास से की जा सकती है। जैसे उन्होंने आद्या भगवती काली की कृपा से 'विद्वत्ता' पाकर सारे जगत् को चकित कर दिया, वैसा ही उदाहरण श्री नागर जी के व्यक्तित्व—कृतित्व से प्रस्तुत होता है।

यह संयोग की ही बात है कि उत्तर प्रदेश के जालौन जनपद के उरई नामक कस्बे में गुप्तावतार बाबा श्री का आविर्भाव सं० १९४१ की श्रावण कृष्ण त्रयोदशी को गुजराती ब्राह्मण-परिवार में हुआ और उसी कस्बे में उनसे लगभग ५३ वर्ष पूर्व सं० १८८९ में श्री कालीदत्त नागर का जन्म अपने समय के प्रख्यात तांत्रिक विद्वान् ज्योतिषाचार्य पं० छविनाथ नागर 'छवि' नामक गुजराती ब्राह्मण के ही परिवार में हो चुका था। पूज्य बाबाश्री बचपन में ही सपरिवार उरई से वाराणसी चले आए थे किन्तु यह एक शोध का विषय है कि उरई के गुजारती ब्राह्मणों ने तन्त्र-मन्त्र की साधना में कहाँ तक सफलता पाई थी।

जालौन जनपद की भी अपनी विशेष महिमा है। वेदव्यास, क्रौञ्च, पराशर और उद्दालक जैसे महर्षि इसी पवित्र भूमि की देन हैं। ऐसी दशा में आश्चर्य नहीं कि उन्हीं ऋषियों की परम्परा में गुजराती ब्राह्मणों के 'मेहता' और 'नागर' दो परिवारों में ऐसी विभूतियों ने जन्म लिया हो। उल्लेखनीय है कि गुजराती ब्राह्मण अपने अत्यन्त पवित्र आचार के लिए सारे देश में प्रख्यात रहे हैं। उनके रसोई-घर में लकड़ी तक धोकर प्रयोग में लाई जाती है और रेशमी वस्त्र पहनकर ही भोजन ग्रहण किया जाता है। ऐसी दशा में कौल-साधना उनके परिवार में कितनी गोपनीयता के साथ चलती रही, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

पं० कालीदत्त नागर के पौत्र श्री अरुण नागर ने अपने पूज्य पितामह की पुण्य स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए 'महा-कवि कालीशोध केन्द्र' स्थापित कर रखा है किन्तु उन्होंने अब तक उनके साहित्यिक कृतित्व की ओर ही ध्यान दिया है, उनकी शाक्त-साधना के सम्बन्ध में वे केवल इतना ही कर पाए हैं कि उनके साधना-स्थल को सुरक्षित बनाए रखा है और उनकी साधना की कुछ वस्तुएँ भी सँभाल कर रखी हैं। साथ ही 'चिदम्बर-संहिता' नामक उनके हाथ का लिखा कदाचित् एक तन्त्र-संग्रह-ग्रन्थ भी

उनके पास विद्यमान है, परन्तु अभी तक किसी तन्त्रज्ञ शोधकारी विद्वान् की दृष्टि इस ओर उन्होंने आकृष्ट नहीं की है।...भगवती की कृपा से पं० कालीदत्त नागर को काव्य-सिद्धि प्राप्त हुई और उन्होंने हनुमत्पताका, गंगा गुण मंजरी, छवि-रत्नम्, रसिक-विनोद, ऋतु राजीव, कवि-कल्पद्रुम, स्फुट दोहावली और हजारों छन्दों की रचना कर डाली। इन्हीं सबके प्रति अब तक ध्यान दिया गया है और एक-दो लघु कृतियाँ प्रकाशित भी हुई हैं। निस्सन्देह, इस सबके लिए श्री अरुण नागर प्रशंसनीय हैं।

हमारे आग्रह पर उन्होंने हमें पं० कालीदत्त नागर के रेखाचित्र का एक ब्लाक उपलब्ध कराया है, जिसे हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। कुछ साहित्य भी हमें उनसे मिला, जिसके आधार पर इन अज्ञात कौल साधक की साधना पर प्रकाश डालने का प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है।

किंवदन्तियों के अनुसार पं० कालीदत्त नागर अपने समय के विख्यात तान्त्रिक थे। वे श्री पीताम्बरा बगलामुखी के उपासक थे और झाड़-फूँक की विद्या में पारङ्गत थे। बुन्देलखण्ड की अनेक रियासतों के राजा उन्हें अपने आश्रय में रखने को उत्सुक थे किन्तु वे जगदम्बा की भक्ति में मग्न सदा स्वतन्त्र, निर्द्वन्द्व ही रहे।

कहते हैं कि पं० कालीदत्त नागर के पिता श्री छविनाथ नागर ने अनेक पुस्तकें संस्कृत में लिखी थीं, जो अब दुर्लभ हैं। अन्य पूर्वज भी बड़े विद्वान् रहे किन्तु श्रीकालीदत्त में वह बात न थी, जिससे ये अधिक योग्य न बन सके। फलतः इनके पिता क्षुब्ध होकर इन्हें जगम्मनपुर (जालौन) के जंगलों में छोड़ आए, जिससे कुल को कलङ्क न लगे। उस जङ्गल में एक बाबा के रूप में भगवान् गणेश ने इन्हें दर्शन दिए और इनकी जिह्वा पर वाग्-वीज अङ्कित कर वापस घर जाने का मार्ग बता दिया। घर पहुँचने पर इन्होंने धारा-प्रवाह संस्कृत-श्लोकों का पाठ प्रारम्भ कर दिया, जिससे सभी लोग चमत्कृत हो उठे। बाद को अपने घर के एक कमरे में उन्होंने अपनी साधना की। साधना का वही कमरा आज 'काली-कुञ्ज' नाम से विद्यमान है।

पं० कालीदत्त नागर के व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं में उल्लेखनीय हैं उनके तेजस्वी नेत्र, आजानु बाहु, कर-कमलों की सामान्य से अधिक लम्बी अंगुलियाँ और गुरु-गम्भीर मुख-मण्डल। गले में रुद्राक्ष की माला धारण करते थे और भाल पर त्रिपुण्ड्र के मध्य में रक्त चन्दन का विन्दु सुशोभित रहता था। सिर पर पगड़ी रहती थी। श्रीजगदम्बा के कैसे अनुपम भक्त वे थे, इसका परिचय उनकी छवि से मिलता है (देखिये आवरण-पृष्ठ ३)।

पं० कालीदत्त जी को वाक्-सिद्धि प्राप्त थी। उनकी काव्य-रचनाओं से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने उन्हें अपने काव्यात्मक उद्गारों में श्रद्धा-पूर्वक स्मरण किया है, जिनसे उनकी तन्त्र-सम्मत उपासना की पुष्टि होती है।

पं० कालीदत्त नागर का जो संक्षिप्त परिचय उपलब्ध है, उसमें उनके दीक्षा-नाम 'भैरवानन्द' का भी उल्लेख है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वे पूर्णाभिषिक्त शाक्त-साधक थे। जालौन के 'पञ्च-नदा' नामक रमणीय स्थल में उन्हें सिद्धि - लाभ हुआ था, इसका भी उल्लेख है। लगभग ८० वर्ष पूर्व सम्वत् १९६६ में उनका तिरोभाव हुआ। उस काल में शाक्त-धर्म गोपनीयता के गहन जाल में आवद्ध था। यही कारण है कि उनके गुरुदेव या उनकी साधना के सम्बन्ध में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। उस दिशा में किसी के द्वारा कदाचित् कोई खोज भी नहीं की गई है। आशा है कि महा-कवि काली दत्त के साहित्यिक कृतित्व के साथ ही उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व पर भी समुचित प्रकाश पड़ेगा।

***

महाकवि श्री कालीदत्त नागर

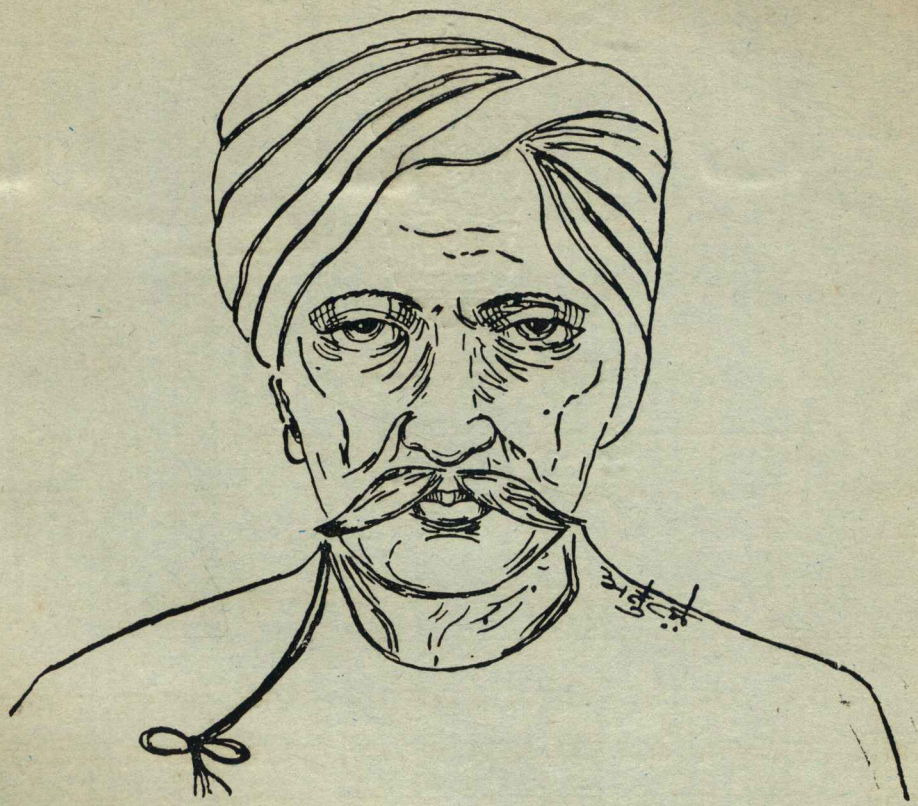

ध्यान धारणा के धृत धाम-धाम में प्रकाम,
जाड्य के हरण अपवर्ग आचरण हैं।
नित्य हैं, अनादि हैं, त्रिलोक में प्रकाशमान,
कारण करण जग तारण तरण हैं।
मन-बुद्धि-चित्त की प्रभूत प्रक्रिया प्रबोध,
ज्ञान-गुरु भक्ति के विशिष्ट जागरण हैं।
सत्य शिव सुन्दर सनातन स्वरूप सिद्ध,
वांछित त्रिदेव विश्व-माता के चरण हैं॥

शक्ति-उपासना

शक्ति-उपासना सभी प्राणियों के लिये हितकारी है। बिना शक्ति-उपासना के न देवताओं में देवत्व, न असुरों में असुरत्व और न मनुष्यों में मनुष्यत्व ही आ सकता है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वृहस्पति आदि शक्ति के ही सहारे अपने-अपने काम व्यवस्थित रूप से करने में समर्थ हो रहे हैं।

दशरथ, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, परशुराम, वसिष्ठ, वामदेव, हयग्रीव, सुरथ, समाधि आदि पुराण पुरुषों ने ही नहीं, प्रताप, शिवाजी, पृथ्वीराज, सुभाष आदि ऐतिहासिक पुरुषों ने भी शक्ति-उपासना की थी और मां की कृपा प्राप्त कर वे विजयी और सिद्ध-काम हो सके थे।

चित्-कला (शक्ति) के अभाव में कोई पलक भी नहीं मार सकता। जड़-वादी लोगों को भी शक्ति को मानना पड़ता है। जिस प्रकृति (नेचर) के भरोसे पर वे उछल-कूद किया करते हैं, वह प्रकृति भी शक्ति का ही विलास है।

यदि किसी-न-किसी प्रकार से शक्ति को मानना ही पड़ता है, तो चिर-काल से प्रचलित 'शक्ति-उपासना' का सरल भाव से अवलम्बन क्यों न किया जाय ?

—'धर्म-रञ्जन' डा० निमाईचन्द्र घोष (चण्डी वर्ष १५ : सम्वत् २०१३ वि०—सन् १६५६ से)

शक्ति की आराधना हेतु सद्यः फलदायी 'चण्डी' मासिक पत्रिका पढ़ें !

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—६